तीन देवता

लेखकः—

श्री बुद्धदेव विद्यालङ्कार

प्रथमबार १०००] १९४१ मूल्य ।)

पुस्तक-विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित ३० वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापिस आ जानी चाहिए। अन्यथा ५० पैसे प्रति दिन के हिसाब से विलम्ब-दण्ड लगेगा।

तीन देवता

प्रकाशक
प्रभात आश्रम
डाकखाना जानी ज़िला मेरठ
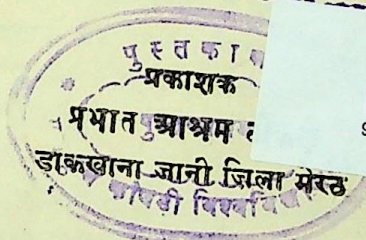
यह पुस्तक श्री लक्ष्मण प्रसाद जी के सुपुत्र के शुभ दान द्वारा छपवाई गई है।

प्रथमवार १०००] १९४१ मूल्य ।)

तीन देवता

ऋषि दयानन्द कदाचित् संसार के सबसे बड़े मूर्त्ति भञ्जक (Icono-chast) कहे जा सकते हैं, यों तो मूर्त्ति भञ्जक होने का गर्व महमूद ग़ज़नवी को भी था। पर वह मूर्त्ति भञ्जक और प्रकार का था, किसी मूर्त्ति पूजक के इष्ट देव की प्यारी मूर्त्ति को ज़बर्दस्ती छीन कर तोड़ देना और बात है और तर्क द्वारा मूर्त्ति पूजकों के अपने ही हाथों से मूर्त्तियों को जलप्रवाह करवा देना कुछ दूसरी बात है ऋषि दयानन्द इस दूसरी प्रकार के मूर्त्ति भञ्जक थे। इस प्रकार के महापुरुष मूर्ति पूजकों से घृणा नहीं करते यही नहीं मूर्ति पूजा के आदि प्रचारकों ने यदि कोई सत्य अंश मूर्त्ति पूजा में रक्खा हो तो उतने अंश का आदर भी वे कर सकते हैं यह मूर्त्ति पूजा और मूर्त्ति पूजक भेद करना, फिर मूर्त्ति पूजा और मूर्त्ति तत्त्व पूजा में भेद करना, कोई दया और आनन्द से भरा हुआ हृदय ही जानता है। ऋषि दयानन्द तो थे ही स्वनाम धन्य ऋषि दयानन्द।

आज उसी ऋषि की कृपा से ज्ञान पाकर मैं, शक्ति शिव और विष्णु इन तीन पौराणिक देवताओं के सम्बन्ध में विचार करने लगा हूँ. यदि इस लघु लेख से उस कलह की कुछ भी गर्मी दूर हो जाय जो आर्य जाति के मूर्त्ति पूजक भाग को आर्यसमाज से दूर किये रहता है तो अपना यत्न सफल समझूंगा।

शक्ति

सबसे पहिले मैं शक्ति को लेता हूं। शाक्त लोग इस देश में वाम मार्गी के नाम से विख्यात हैं, काली देवी इस शक्ति

का ही दूसरा नाम है। इसके उपासक बकरे भैंसे आदि का बलिदान करते, मद्य पीते और व्यभिचार तक को धर्म मानते हैं किन्तु यह सब कुछ शक्ति पूजा के नाम पर हो यह देखकर आश्चर्य होता है मनुष्य की शक्तियों में सर्व श्रेष्ठ शक्ति मनन अथवा ज्ञान की शक्ति है इसी के बल पर वह प्राणि मात्र पर राज्य करता है। प्रकृति के गम्भीर तत्वों की खोज करता है हवा पानी और आग को वश में करके उनसे सैंकड़ों प्रकार के काम लेता है जिस शराब के प्रवेश करते ही वह बुद्धि शक्ति विदा हो जाती हो उसके द्वारा शक्ति पूजा करना उपहास नहीं तो क्या है। यदि यह शक्ति की पूजा है तो शक्ति का निरादर कैसा होगा ?

परन्तु यह सब होता है क्यों ? इस लिये कि शराब से थोड़ी देर के लिये शक्ति बुद्धि का आभास होता है।

परन्तु देखना तो यह है कि जिन्होंने शक्ति पूजा चलाई थी क्या वह यही चाहते थे, आइये इसकी पड़ताल करें। शक्ति पूजा का वर्णन हमें मार्कण्डेय पुराण में मिलता है। मार्कण्डेय पुराण में यह कथा इस प्रकार है, "महिषासुर को वरदान मिला कि वह सब देवों से अवध्य है अर्थात् उसे कोई देव मार नहीं सकता यह वरदान पाकर वह मदोन्मत्त हो उठा। देव मारे मारे फिरने लगे अंत में सब देवों ने सभा कर के निश्चय किया कि इसका कोई उपाय किया जाना चाहिये। अंत में उपाय यह निश्चय हुआ कि वरदान का सम्बन्ध उन देवों से है जो इस समय विद्यमान हैं यदि कोई नया देव या देवी उत्पन्न हो तो वह क्योंकि इस वरदान में सम्मिलित नहीं इसलिये वह इस महिषासुर को मारने में समर्थ होगा। इस पर सब देवों ने निश्चय किया कि आओ एक नई देवी उत्पन्न करें इस पर सब देवों ने अपना अपना अंश दान किया।

जिस तेज पुञ्ज से महाशक्ति भगवती दुर्गा का जन्म हुआ, उस देवी ने महिषासुर का मान मर्दन किया और उसी की पूजा अब शाक्त लोग करते हैं"

अब देखना चाहिये कि यह महिषासुर कौन है। पौराणिक जगत् का बच्चा बच्चा जानता है कि महिष अर्थात् भैंसा यम का वाहन है।

अब देखना चाहिये कि इस संबंध में वेद क्या कहता है। वेद कहता है मृत्युर्यमस्यासीद् दूतः (अथर्व १८-२-२७) अर्थात् भगवान् जब संसार को नियम में रखना चाहते हैं तो उनका सबसे अटल नियम का दूत मृत्यु है। बस इसी मृत्यु को महिषासुर समझिये। हमारा यह समझना ठीक है इसका प्रमाण यही है कि इससे अगली सब कथा स्पष्ट समझ में आजाती है।

अब यदि यह मानलें कि महिषासुर नाम मृत्यु का है तो देखना चाहिये कि उसका मर्दन करने वाली शक्ति कौनसी है।

बहुत से लोग तो यह बात सुनकर ही चौकेंगे कि मृत्यु का मर्दन-क्या यह भी सम्भव है परंतु इसमें हम क्या कहें। वेद भगवान् स्वयं कहते हैं। ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत- (अथर्व १८-५-१६) अर्थात् देवों ने ब्रह्मचर्य्य और तप से अथवा ब्रह्मचर्य रूप तप से मृत्यु को मार भगाया, बस यह ब्रह्मचर्य अथवा वीर्य रक्षा ही शक्ति पूजा है। हाथ पैर आंख कान, नाक आदि देवों पर जब मृत्यु रूप महिषासुर ने आक्रमण किया तो उन सबने मिलकर इस वीर्य रूप महाशक्ति को उत्पन्न किया, इसके उत्पन्न करने में उन सबने अपना अपना अंश दान किया इसका प्रमाण यह है कि इस वीर्य के एक

बिन्दु से ठीक पिता के आंख नाक कान सरीखे आंख नाक कान आदि उत्पन्न हो जाते हैं, बस इस शक्ति की पूजा ही शाक्त धर्म है।

जो लोग इस शक्ति की सीधे मार्ग से पूजा नहीं करते फिर उन्हें वाम मार्ग से शक्ति उत्पन्न करनी पड़ती है परंतु जिन्हों ने दक्षिण मार्ग से इस शक्ति को उत्पन्न किया उसकी तुलना वे क्या कर सकते हैं? जो नौजवान शराबखाने में नशा मांगने आता है वह इस बात की स्पष्ट घोषणा करता जाता है कि मेरी जवानी का दिवाला निकल गया। उधार मांगने वही तो जाता है जिसकी अपनी पूंजी समाप्त हो जाती है, परंतु इस नक़ली नशे में असली का आनन्द कहां।

वेद ने इस नशे का वर्णन इस प्रकार किया है:—

हन्ताहं पृथिवी मिमां निदधानी हवे हवा,
कुवित् ? सोमस्या पामिति ऋ० १०। ११९। ९।

आज मेरे अङ्ग अङ्ग में ऐसी उमङ्ग छाई है कि इस धरती को उठाने को जी चाहता है। जी चाहता है कि बस इस धरती को इधर से उठा कर इधर रखदूं और इधर से उठा कर इधर रख दूं। जानते हो! आज मेरी यह हालत क्यों हुई है? इस लिये कि मैं ने अपने वीर्य्य को मस्तिष्क में चढ़ा लिया है मैं ऊर्ध्व रेता हो गया हूं।

यह वीर्य्य रक्षा का नशा ही तो है जिस से मनुष्य मृत्यु के भय को जीत लेता है। शराब से शक्ति मांगने वाले इस नशे को क्या जानें।

एक समय हमारा एक शराब पीने वाले से मेल हो गया। यही शराब की चर्चा चल पड़ी, मैं शराब के नशे की निन्दा कर रहा था। शराबी से न रहा गया। बोला, कभी पी कर भी

देखी है जो इतना खण्डन कर रहे हो? हमें भी विनोद सूझा, कहा – भाई पिलादो, पी कर भी देख लेंगे। फिर क्या था, वह तो उछल पड़ा, बोला – अभी लाता हूँ बोतल, बोतल भी वह जो नगर में सब से अधिक मूल्य में मिले। बढ़िया चौबारे पर जहां ठण्डी २ हवा चलती हो, सुन्दर २ ग़लीचे बिछे हों, बैठा कर पिलाऊंगा, और प्याली भी वह कि प्याली ही देखकर, पीने को जी ललचा जाय। हमने कहा—भाई कोई पिलाने का ढङ्ग करो तो पियें, इस तरह से हम न पियेंगे।

शराबी ने झुंझला कर कहा—कि फिर अब और ढङ्ग क्या होगा? यह सब कुछ ढङ्ग नहीं तो क्या है, सुन्दर भवन, ठंडी पवन, छलकती प्याली और मद माती पिलाने वाली। हम ने हंस कर कहा–कि भाई हमें पिलाने का ढङ्ग तो तुम्हारे हाथ में है, हम तुम्हारी दोनों अवस्था देखेंगे। पीने से पहिले और पीने से पीछे, यदि पीने के पीछे तुम में कोई ऐसी ज्योति दिखाई दी जो हमें अपने अन्दर न मिली, तो हम भी पीलेंगे।

शराबी बोला कि भाई वह तो एक सरूर है जो पीने पर ही पता लगता है। जिसका नौजवान बेटा मर गया हो, इस प्याली का ही चमत्कार है कि उसे अपना सारा ग़म भूल जाता है। हम ने पूछा—कि ग़म ही उड़ जाता है या साथ में होश भी उड़ जाते हैं? बोला— हां, दोनों ही उड़ जाते हैं। हम ने कहा—भाई, तब तो हम न पियेंगे, हमें तो वह नशा बताओ कि होश बने रहें; फिर बेटे की मौत का ग़म न हो। क्लोरो-फार्म के नशे में पेट चिराया तो इस में बड़प्पन की क्या बात है।

इस पर शराबी झुंझला उठा, बोला— क्या यह भी हो सकता है कि बेटे की मौत के होश भी बने रहें फिर ग़म भी न हो। हम ने कहा—वही तो नशा है जो सच्ची शक्ति पूजा,

अथवा ब्रह्मचर्य्य से उत्पन्न होता है, पर शराबी को विश्वास न आया।

हमने कहा आओ इतिहास के पृष्ठ खोल कर उस नशे के दर्शन करें, यह क्या दृश्य है, सिक्खों का सतसङ्ग लगा है बीच में दशम गुरु श्री गोविन्द सिंह जी महाराज बैठे हैं। शत्रु का आक्रमण हुआ। सामने जवान बेटा खड़ा था, चार बेटे थे तीन काम आचुके थे अब यही एक शेष था, पिता का आदेश हुआ पुत्र! शत्रु का आक्रमण हुआ है, आज तुम्हें रणक्षेत्र में जाना है पुत्र को प्यास लगी थी पिता से जल पीने की आज्ञा मांगी पिता ने उत्तर दिया पुत्र क्षत्रिय के द्वार पर जब शत्रु खड़े हों तो कटोरों का नहीं कृपाण धारा का जल पिया जाता है पुत्र ने कृपाण निकाल ली और दूसरा हाथ जल के कटोरे के लिये आगे बढ़ाया पिताने परीक्षा लेने के लिये अपनी तलवार दूसरे हाथ में देदी। पुत्र ने भी इस इशारे को समझा और जल पिये बिना ही रणक्षेत्र को चल दिया वह जोश भी अपूर्व था शत्रुओं के छक्के छूट गये परन्तु प्रभु की इच्छा बलवान् थी उस दिन की विजय बड़ी मंहगी सिद्ध हुई उस दिन गुरु गोविन्द सिंह का यह चौथा पुत्र भी वीर गति को प्राप्त हुआ सायङ्काल के समय सारी सभा शोक मनाने बैठी, एक भक्त ने खड़े होकर गुरु महाराज से सहानुभूति प्रकाश की परन्तु यहां तो रङ्ग ही और था मैंने शराबी से कहा कि न हुये तुम नहीं तो गुरु जी को एक प्याली ढालने की नेक सलाह दे देते। ज़रा ग़म ग़लत हो जाता परंतु वहां तो दूसरा ही नशा था। सामने बैठे वीरों को लक्ष्य करके गुरु महाराज ने दोहा पढ़ा।

इन पुत्रन के कारणे वार दिये सुत चार,
चार गए तो क्या हुए, जब जीवत कोटि हज़ार।

तो यह मृत्यु और मृत्यु का भय, दोनों को जीतने वाला नशा उत्पन्न होता है वीर्य्य रक्षा से, वस यह वीर्य्य रक्षा ही शक्ति पूजा है, यही सच्चा शाक्त धर्म है। परन्तु यह वीर्य्य रक्षा हो कैसे ?

इसका रहस्य ब्रह्मचर्य्य-शब्द में छिपा है। ब्रह्मचर्य्य का अर्थ है ब्रह्म में विचरना अर्थात् ईश्वर-भक्ति। वस, जिनकी सारी वीर्य्य-शक्ति ईश्वर-भजन में लग जाती है उन्हें वीर्य्य रक्षा के लिये कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता, यही वीर्य्य रक्षा का सर्वोत्तम उपाय है। परन्तु फिर प्रश्न उठता है कि यह सारी वीर्य्य-शक्ति को पी जाने वाली भक्ति पैदा कैसे हो ? यह एकाग्रता ही तो उत्पन्न नहीं होती, इस का उत्तर है कि भूख से।

जिस प्रकार बिना भूख के भोजन में रुचि नहीं होती इसी प्रकार विना भूख के भजन में भी रुचि उत्पन्न नहीं होती।

जो मृत्यु से बचना चाहें वीर्य्य रक्षा करें, जो वीर्य्य-रक्षा चाहें वे ईश्वर-भजन करें; जो भजन करना चाहें वे भजन की भूख उत्पन्न करें। परन्तु फिर प्रश्न उठता है कि भजन की भूख कैसे उत्पन्न हो ? सो देखना चाहिये कि क्या कभी भजन की भूख, स्वाभाविक रूप से उत्पन्न भी होती है वा नहीं ? वस, उस अवस्था को हम सदा उत्पन्न किये रक्खें तो भजन की भूख भी सदा बनी रहेगी। अब देखना चाहिये कि भजन की भूख स्वाभाविक रूप से कब उत्पन्न होती है ? हमारे जीवन का अनुभव बताता है कि भजन की स्वाभाविक भूख प्राणि मात्र को दुःख में उत्पन्न होती है। सो, वस, यही सच्चा मार्ग है। जो वीर्य्य-रक्षा के निमित्त प्रभु भक्त बनना चाहें, उन्हें चाहिये कि सदा दुःख से चिपटे रहें। यदि दुःख उनके पास न आवे तो वे दुःख के पास चले जावें।

इस संसार में तीन महा दुःख हैं:—

(१) अन्नवस्त्रादि का अभाव।

(२) अभाव न हो तो अन्याय पूर्वक दूसरे की वस्तु छिन जाने से अभाव उत्पन्न हो जाता है। इसलिये दूसरा शत्रु अन्याय है।

(३) वस्तु भी हों अन्याय भी न हो, तो भी वस्तु के प्रयोग का ठीक ज्ञान न होने से दुःख उत्पन्न हो जाता है।

इस लिये जो लोग प्रभु-भक्त बनना चाहें उन्हें पराए दुःख को अपना दुःख जानने का निरन्तर अभ्यास करते रहना चाहिये। इसके लिये सरल उपाय यह है कि वे इन तीन दुःखों में से एक दुःख को नष्ट करना अपने जीवन का ध्येय बनाकर विधि पूर्वक उसके मिटाने की दीक्षा ले लें।

यह दीक्षा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्ण की दीक्षा कहलाती है। इस हृदय में निरन्तर जलने वाले व्रत को ही अग्नि कहा गया है और इस अग्नि की ज्वाला की ही मूर्त्ति शिव मन्दिर में बनी है। वर्ण सङ्कल्प रूपि अग्नि की ज्वाला शरीर रूपि दीवे में पड़े हुए वीर्य्य रूपि तेल को ऊपर खेंचती है और इस प्रकार भक्तों के हृदय में सदा एकाग्र रूप से जलती है। यही भाव गीता में इस प्रकार कहा गया है:—

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सो पमा स्मृता
योगिनो यत चित्तस्थ युञ्जतो योगमात्मनः

अर्थात् योगी को मन एकाग्र करने के लिये सब से अच्छा दृष्टांत दीपक का है। जिस प्रकार दीपक की लौ को न बुझने देना, न चञ्चल होने देना एक कठिन कार्य है वैसा ही अन्दर की लौ को स्थिर करना भी कठिन कार्य है। यह लक्ष्य सदा सामने रहे, इसलिये शिव मन्दिर में शिव सङ्कल्प की अग्नि

की मूर्त्ति पत्थर की बना दी गई है। दीवा भी पत्थर का लौ भी पत्थर की, सदा स्थिर, सदा स्थाणु, साथ ही शिव रुद्र भव शर्व्व, पशुपति आदि नाम अग्नि के हैं। इस विषय में शतपथ ब्राह्मण का प्रमाण भी है।

अग्निर्वैस देव स्तस्यैतानि नामानि शर्व्वइति यथा प्राच्या आचक्षते भवइति यथा वाहीकाः

पशूनां पती रुद्रोऽग्निरिति तान्यस्या शान्तान्येवे तराणि नामान्यग्निरित्येव व शान्ततमम्। शतपथ १-७-३-८

इसी लिये पुराणों में शिवलिङ्ग को ज्योतिलिङ्ग भी कहा है। यह तो स्पष्ट दीपक की लौ की मूर्ति है और यह योनि लिङ्ग की भ्रष्ट कथा स्वार्थी लोगों ने पीछे घड़ डाली है। जो लोग इसे अशलील मूर्ति बताते हैं उन्हें प्रतिबिम्ब को बिम्ब से मिला तो लेना चाहिये था, उसी समय भेद खुल जाता है। इस प्रकार हम ने देख लिया कि शक्ति पूजा नाम वीर्य्य-रक्षा का है और शिव पूजा नाम है ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यादि पवित्र व्रत को धारण करके उसे अटल रूप से पालने का। अब इस से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि रुद्र नाम सेनापति का क्यों है। जो स्थान शरीर में वीर्य्य का है वही राष्ट्र में सेना का है इसी लिये उसे संस्कृत में बल कहते हैं। सो शक्ति नाम भी सेना का हुआ। वही राष्ट्र की मृत्यु को जीतने वाली महिषासुर मर्दिनी है। बस, जो स्थान शरीर में शिव सङ्कल्प का है वही राष्ट्र में सेनापति का है इस लिये उसे रुद्र कहते हैं। सेना का ही नाम गिरिजा है क्यों कि सैनिक लोग गिर, अर्थात् वानी में उत्पन्न होते हैं। वे जब शपथ लेते हैं तब ही सैनिक कहलाते हैं। पर्वत नाम उन भवनों का है जिन में सेना रहती है। क्योंकि वे उङ्गलियों के पर्व्वों के समान बराबर टुकड़ों में बने होते हैं। इन पर्वतों में से नदी के समान निकल

कर सेना, युद्ध क्षेत्र रूपि समुद्र में प्रतिद्वंदी सेना से जा टकराती है इसी लिये उसे पार्वती कहते हैं, सो यही सेनापति गिरिजापति पार्वतीपति हैं। सैनिक लोग क्योंकि सेनापति की आज्ञा को पशुवत पालन करते हैं अर्थात् विचार की मनन की उलझन में न पड़के सहज स्वभाव से पूरी करते हैं इसलिये वे पशु और सेनापति पशुपति कहलाते हैं। जिस मनुष्य की इन्द्रिय सेना उसके शिव सङ्कल्प की आज्ञा का यथावत् पालन करे वह मनुष्य भी पशुपति है। इस प्रकार जो नियम शरीर में हैं वही राष्ट्र में भी काम कर रहे हैं। शरीर की भांति राष्ट्र का सेनापति भी स्थाणु अर्थात् अटल होना चाहिये, यही शिव पूजा का रहस्य है। अब आइये, विष्णु पूजा क्या है, यह भी देखें।

विष्णु

विष्णु के विषय में वेद में लिखा है:—

ध्रुवादिग्विष्णु रधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इसवाः

अथर्व्व ३- २७- ५-

अर्थात् ध्रुवादिक् का अधिपति विष्णु है। यह रङ्ग बिरङ्गी ग्रीवाओं वाला बनस्पति जगत् उसका अंग रक्षक है और यह सब वृक्ष उसके बाण हैं।

इस ध्रुवादिक् का तत्त्व ऊर्ध्वादिक् के साथ मिलाने से पता लगता है।

इस लिये ध्रुवा का तत्त्व जानने के लिये ऊर्ध्वा का तत्त्व जानना आवश्यक है।

ऊर्ध्वा का तत्त्व इस प्रकार है:—

ऊर्ध्वा दिग् बृहस्पति रधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्ष मिषवः।
अथर्व ३- २७- ६-

अर्थ—(ऊर्ध्वा) उन्नत होने की (दिक्) दिशा है (बृहस्पतिः) बड़े बड़ों से भी बड़ा भगवान् (अधिपतिः) अधिपति है (श्वित्रः) जो कि श्वेत, शुभ्र ज्योतिर्मय है (रक्षिता) वह रक्षक है (वर्षम्) वर्षा तथा सुखवर्षी पुरुष (इषवः) इस उद्देश्य में इच्छापूर्ति करने वाले बाणरूप सहायक हैं।

मैं नीचे से ऊपर चढ़ता हूं। यहाँ के दृश्य निराले हैं। यहां रंग-बिरंगे रंग नहीं रहे। यहां एक 'श्वित्रः' अर्थात् श्वेत रंग हो गया है। सातों रंग अन्त को यहीं तो इकट्ठे होते हैं। जो 'बृहतास्पति' है उसका यही लक्षण है—'यत्र विश्वम्भवत्येक-नीडम्'—जिसमें सब परस्पर विरोधनी शक्तियां एक हो जाती हैं।' हे प्रभो! बड़ा बनने के लिये; ऊंचा उठने के लिए, मैं समन्वय करना सीखूं। सात रङ्गों को मिलाकर एक रङ्ग बनाना सीखूं। इस दिशा के तत्त्व खोलने वाले वर्षा के बिन्दु हैं। वह तप के सहारे ऊंचे चढ़े हैं। तपस्विराज सूर्य के सङ्ग से तपकर ऊंचे चढ़ गये, पर यह ऊंचा चढ़ना उन्हें भाया नहीं। उन्होंने कहा—बड़ा तो वह है जो छोटों के लिये अपने आपको मिट्टी में मिला देता है। वह वर्षा की नन्हीं बूंद बनकर बरस पड़े। फिर क्या था वानस्पत्य जगत् ने भी आज्ञापालन में कोई कसर उठा न रक्खी। अनन्त ग्रीवाओं से मिलकर, मूक किन्तु हृदय जकड़ लेने वाली भाषा में, खूब गला फाड़ फाड़कर गया। जबतक मुरझा न गये गाते गये। ऊर्ध्वा और ध्रुवा इस प्रकार साथ-साथ चलती हैं।

अब हमने देख लिया कि बृहस्पति नाम सर्वोच्च लोगों का है उन ऊर्ध्वादिशा के अधिपति लोगों के शासन में चलने

से ध्रुवता अर्थात् स्थिरता आती है। यही भाव ध्रुवादिक् के वर्णन में दिया गया है। इसका विस्तार इस प्रकार है:—

हमारे हृदय में तरङ्गे उठती हैं और विलीन हो जाती हैं। सद्-भावनायें आती हैं और आचरण का रूप पाने से पहिले ही विदा हो जाती हैं। हे भगवान् ! इन भावनाओं को स्थिर कैसे करें ?

भगवान् कहते हैं—परस्पर एक दूसरे की सहायता करो। जिस भावना को स्थिर करना चाहते हो उस भावना के रसिक इकट्ठे होकर एक को बड़ा बनालो जिसमें वह भावना प्रबल हो, फिर उसके शासन में चलो। देखो भावना कैसी ध्रुव होती है। इसी का नाम है—'ध्रुवादिक'।

इसी ध्रुवता की दिशा में 'विष्णु' अर्थात् जगत् के समस्त पदार्थों में व्याप्त होकर उन्हें संयोग की अवस्था में रखने वाला प्रभु इस दिशा का 'अधिपति' है। देखो उसकी सृष्टि में क्या लीला हो रही है। वह वर्षा करता है। मानो उसकी आज्ञा होती है–गाओ ! बस फिर क्या था ! लाल पीले, नीले, हरे, नारंगी, बैंगनी सभी तो तत्काल सिर उठाकर खड़े हो जाते हैं फिर वर्षा होती है, हरियावल में फूल लग जाते हैं। शरीर सबके हरे हैं पर ग्रीवायें 'कल्माष' हैं—रंग-विरंगी और वह 'ग्रीवा' का काम कर रही हैं। ग्रीवा का काम है बोलना (उणादि १. १५४.)। वह सब बोल रही हैं। क्या बोल रही हैं ? सब रंग विरंगी ग्रिवाओं से एक ही मूक-शब्द निकक रहा है—"देखो उसने हमें हंस-हंस कर सब का चित्त प्रसन्न करने को कहा है। हम सब रंगों का भेद भुला कर उसकी आज्ञा मान रही हैं, हमारा शासन कर्ता 'ओ३म्' है। उसने हमें पृथ्वी की छाती फाड़ कर उलटी ओर अर्थात् नीचे से ऊपर की ओर चलने

की आज्ञा दी। हम वैसा ही करती हैं। इसीलिये हमारा नाम 'वीरुध्' है। ऊपर से नीचे गिरना अति सरल है; अनायास साध्य है, किन्तु हमें अति कठिन आज्ञा हुई है। उतरना सरल है, चढ़ना कठिन है। परन्तु हम उस आज्ञा के पालन में भी तत्पर हैं। तुम अपनी भावनाओं को दृढ़ करना चाहते हो। रङ्ग-रूप का भेद भुला कर बड़ों के शासन में चलो, कठोर से कठोर आज्ञा का पालन करो, नीचे से ऊपर चढ़ो, यही ध्रुवता का मार्ग है।"

इस प्रकार हमने देख लिया कि ऊर्ध्वा नाम बड़प्पन का और ध्रुवा नाम स्थिरता का है ध्रुवा के अधिपति विष्णु हैं। अर्थात् किसी भी विषय के पूर्ण तत्त्व को पाने से मनुष्य उस विषय का बृहस्पति कहलाता है और उस विषय में सफलता पाने की कामना करने वाले यदि उस के शासन में चलें और परस्पर के भेद-भाव भुलादें तो यह सङ्गठन ही उन्हें भी एक दिन बृहस्पति बना देगा और जब तक वे बृहस्पति न हों उन की रक्षा करेगा, उनके सङ्कल्प चिरस्थायी होंगे और उन्हें फल तक पहुँचाने वाले होंगे। इसी लिये सङ्गठन की ध्रुवादिक् का अधिपति कहा गया यह सङ्गठन ही विष्णु है इसी लिये शतपथ ब्राह्मण में सैकड़ों स्थलों पर कहा है —यज्ञो वै विष्णुः अर्थात् सङ्गठन का नाम विष्णु है।

विष्णु के अवतारों का भी यही रहस्य है।

कूर्मावतार

पुराण के वैष्णव अवतारों में सब से प्रथम कूर्मावतार को लीजिये।

ते (ऋषयः) किं प्ररोचत किं प्ररोचत इतिचेरु रेत् पुरोडाश मेव कूर्म्मं भूत्त्वा सर्पन्तं तेह सर्व्वे एव मेनिरेऽयंवै यज्ञ इति
शतपथ १- ६- २- ३

ऋषिलोग देवों की विजय का रहस्य जानने के लिये यह ढूंढते फिरते थे कि इन देवों को क्या अच्छा लगता है क्या अच्छा लगता है तब उन्हें कछुआ बन कर सरकता हुआ पुरोडश मिला, बस उन्होंने जान लिया कि यही यज्ञ है।

अब देखना चाहिये कि पुरोडाश क्या है।

शिरोह वा एतद् यज्ञस्ययत् पुरोडाशः सयान्येवेमानि शीर्ष्णः कपालानि तान्ये वास्य कपालानि मस्तिष्क एव पिष्टानि।

शतपथ १-२-१-२-

अर्थात् यज्ञ का शिर पुरोडाश है उस में पिष्ट मस्तिष्क है और कपाल तो कपाल हैं ही, सो पता लगा कि कूर्म नाम सिर का है। दृष्टान्त है भी अच्छा जिस प्रकार कछुआ अत्यन्त कोमल होता है किन्तु कठोर हड्डियों में छिपा रहता है। इसी प्रकार मस्तिष्क भी कठोर हड्डियों में छिपा है इसलिये कूर्म नाम शिर का है। अब कूर्मावतार क्या है समझ में आ गया। हर सङ्गठन में कुछ मनुष्य ऐसे होते हैं जो उस सङ्गठन के सिर (Brain) कहलाते हैं वे सामने नहीं आते किन्तु वही सब के आधार होते हैं। इसी प्रकार देवों को चाहिये कि वे जिस समुद्र का मन्थन करने चलें उसके मन्थन के लिये कुछ अत्यंत संयमी और यश से दूर भागने वाले विद्वानों का संग्रह करें। यह विद्वान ऊपर नहीं रहते किन्तु समुद्र के तल में रहते हैं। किन्तु सारा समुद्र-मन्थन इन की पीठ पर ही चलता है, इसे अथर्व वेद में अभी वर्त मणि के नाम से कहा है और पुराणों में कूर्म्मावतार कहा है, यह सिर ही है। जिनके बल पर देव लोग अमृत पान करते हैं। यही सिर कूर्म्मावतार हैं।

मत्स्यावतार

इसकी कथा शतपथ ब्राह्मण मे इस प्रकार है।

मनुके पास एक समय लोग हाथ धोने का जल लाए, उसमें कहीं एक मच्छी आगई, वह कहने लगी मुझे पाल ले मे समय पड़ने पर तुझे पार उतारूंगी, मनु ने पूछा तू मुझ से किससे पार उतारेगी मच्छी ने कहा कि इस संसार मेंबड़ी भारी बाढ़ आने वाली है यह सब धरती उसमें डूब जायगी उससे मैं तुझे पार उतारुंगी। परन्तु मुझे अलग रखना नहीं तो जब हम छोटी होती हैं एक मच्छी दूसरे को खाजाती है, इस लिये उस समय हमारा बड़ा विध्वंस होता है इसलिये पहिले मुझे एक घड़े में पालना, फिर एक लम्बी खत्ती खोद कर उसमें पालना जब उससे भी बड़ी हो जाऊं तो समुद्र में छोड़ देना फिर मैं नाश से पार हो चुकी हूँगी, फिर अमुक तिथि को बाढ़ आएगी बस उस समय मैं तुझे पार उतारूंगी सो जब वह बाढ़ आई यथा समय नाव पर पहुंचा उसी समय मत्स्य भी वहां आ पहुंचा सो वह उसे उत्तर गिरी की ओर लेगया वहां जाकर बोला लो मैंने तुझे पार उतार दिया अब तू वृक्ष पर नाव बांध कर पर्वत पर रह यहां तुझे पानी अन्दर न घसीट सकेगा ज्यों ज्यों जल उतरे, उतना उतना नीचे सरक आना, बस इस प्रकार बाढ़ आई और सब प्रजा को बहा ले गई एक मनुष्य शेष रह गया, सो वह ईश्वर पूजा और परि-श्रम का जीवन बिताने लगा सो उसने पाक यज्ञ किया, सो उसने घी दही मस्तु आमित्ता सब का जल में हवन किया उससे साल भर में एक स्त्री उत्पन्न हुई, सो वह गाती हुई निकली उसके पैरों में घृत था उससे मित्र वरुण का मेल हुआ। उन्होंने उससे पूछा तू कौन है उसने

कहा मैं मनु की लड़की हूं। वे बोले कहदे मैं तुम्हारी हूं वह बोली नहीं जिसने मुझे उत्पन्न किया मैं तो उसी की हूं। सो वह मनु के पास आगई मनु ने पूछा तू कौन है वह बोली तेरी बेटी, मनु ने कहा भगवती ! तू मेरी पुत्री कैसे, वह बोली यह जो तूने दही मस्तु आमिक्षा का हवन किया उससे मैं पैदा हुई हूं, सो मेरे लिये यज्ञ में स्थान बना सो वही यज्ञ में इडा है। शतपथ-१-८-१-१-११ ।

दूसरे स्थानपर शतपथ में ही कहा है—

अन्नंवा इडा, अर्थात् इडानाम अन्न का है

मित्रावरुण नाम ब्राह्मण और क्षत्रिय का है

शत- - -

अब इस प्रकरण में इडा मित्र तथा वरुण इन तीन का अर्थ हमें ज्ञात है, मनु की सन्तान का नाम मनुष्य है इसलिये जिस प्रकार ब्रह्म और ब्राह्मण पर्य्यायवाची हैं इसी तरह राघवः और राघवाः पर्यायवाची हैं इसी प्रकार मनु को मानव का पर्यायवाची मान लें तो कथा का अर्थ झट समझ में आजायगा।

पशु पक्षि आदि से मनुष्य में क्या भेद है इसी कथा में बताया गया है।

जब किसी जाति के जीवों की संख्या बढ़ने लगती है तो कहते हैं कि इनमें बाढ़ आगई, इस बाढ़ का अन्तिम परिणाम है नाश जिस प्रकार जल में डूब कर प्राणी मर जाते हैं इसी प्रकार जनसंख्या बढ़ने से हर प्रकार की सृष्टि का अन्त हो जाता है, भोज्य सामग्री को यदि किनारा समझ लें और संख्या को जल तो हम देखेंगे कि जिस प्रकार संसार में किनारे और जल का युद्ध सदा से चला आया है इसी प्रकार जन संख्या और भोग्य सामग्री का युद्ध भी सदा चला आया है, इस युद्ध

में पशु पक्षी आदि तो झट ही डूब जाते हैं एक मानव में यह शक्ति है कि वह सदा ऊपर तैरने का यत्न करता है। अब यदि मनु का अर्थ मानव जाति मित्र वरुण का अर्थ ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा इडा का अर्थ अन्न मान लें तो मत्स्य वे लोग हुए जो इस बाढ़ में तैरना जानते हैं अर्थात् भोग्य सामग्री पैदा करने वाले लोग। अब कथा का अर्थ यों हुआ कि मानव जाति में जब पहिले पहिल कृषि विद्या का जानने वाला उत्पन्न हुआ तो उसने मनुष्य जाति से कहा कि देखो जब जन संख्या में बाढ़ आयेगी तो मैं ही तुम्हें पार लगाऊंगा। सो इस मत्स्य ने अर्थात् कृषक वर्ग ने अन्न कूट खड़ा कर दिया। किंतु यह अन्न कूट कैसे खड़ा हुआ कि इसी प्रजा में मानव जाति ने घी दूध आदि पदार्थ बांटे और कृषक खेती करने लगे। उस से पहिले तो दूध से ही काम चल जाता था किंतु एक संवत्सर के पीछे मानव जाति का कृषकों को पालना और अन्य सब को भी घी दूध देना फल लाया और खेती पैदा हुई। ब्राह्मण क्षत्रियों ने कहा कि यह हमारी है। किंतु खेती बोली, मैं तो मनुष्य मात्र की हूं, क्योंकि उन सब ने मिल कर मुझे पैदा किया है। अब यहां इतना और समझ लेना चाहिये कि अन्न नाम केवल गेहूं आदि का ही नहीं है किंतु समस्त आलम्बन पदार्थों का है। और मत्स्य नाम उन शिल्पियों का है जो उन पदार्थों को उत्पन्न करते हैं। इस प्रकार पशु पक्षी आदि में यह सामर्थ्य नहीं कि वे अपनी जन संख्या की वृद्धि के साथ साथ भोग्य सामग्री भी उत्पन्न कर सकें। किंतु मानव में यह अद्भुत शक्ति है कि वह सहस्त्रों उपायों से अपनी भोग्य सामग्री उत्पन्न करके अपने किनारे की जनसंख्या की बाढ़ रूपी जलौघ से बचा सकती है। यही भोग्य सामग्री का सञ्चित भण्डार उत्तर गिरि है। इस प्रकार हमें पता लग गया कि मत्स्यावतार

नाम शिल्पवर्ग का है जिसकी कृपा से हम बढ़ती हुई जनसंख्या के समुद्र में डूब कर मर नहीं जाते, किन्तु यह भोग्य सामग्री समस्त मानव जाति के अधिकार में होनी चाहिये। क्योंकि यह विष्णु की है, यज्ञ की है अर्थात् सारे मानव समाज के संगठन की है यही इस कथा का भाव है। इसी कथा को पुराणों ने मत्स्यावतार के नाम से वर्णन किया है।

वराह अवतार

वराह अवतार की कथा पुराणों में इस प्रकार है कि एक समय हिरण्याक्ष धरती को उठाकर समुद्र में लेगया उस समय भगवान् ने वराह रूप धारण करके समुद्र में से उसका उद्धार किया. अब इस कथा का अर्थ जानना भी कठिन नहीं, यदि कूर्म्म वे ब्राह्मण लोग हैं जो प्रजा (Masses) रूपी समुद्र के जल में छिपकर रहते हैं मत्स्य यदि वे शिल्पी हैं जो योग्य सामग्री पैदा करते हैं तो वराह वे तटस्थ लोग हैं जो जल और स्थल अर्थात् राजा और प्रजा दोनों में गति रखते हैं। जब शिल्पी लोग अन्न उत्पन्न करते हैं तो बीच में कई ऐसे धूर्त लोग उत्पन्न हो जाते हैं जो चालाकी से प्रजा की सारी कमाई को हड़प कर लेते हैं वे संसार के हर पदार्थ को सोने की आंख से देखते हैं इसलिये हिरण्याक्ष कहलाते हैं ऐसे समय शासन विधान में चतुर ऐसे राष्ट्र भृत (Sidesmen) लोगों की आवश्यकता होती है, जो अपनी वीरता और शासन की चतुराई से ऐसे धूर्त मनुष्यों के ग्रास से उनकी कमाई को बचा कर उन्हें समुद्र में डूबने से बचाते हैं ऐसे लोगों को वराह कहा जाता है जिनके लिये नीति कारों ने कहा है।

नरपति हित कर्ता द्वेष्यतां याति लोके
जन पद हित कर्ता त्यजते पार्थिवेन्द्रैः ।
इति महति विरोधे वर्तमाने समाने,
नृपति जनपदानां दुर्लभः कार्य कर्ता ॥

यह लोग जल और स्थल classes और Masses दोनों में एक से विचरने वाले होने के कारण वराह कहलाते हैं ।

नृसिंहावतार

अब तक हमने देखा कि कूर्म विद्या के क्षेत्र के नेता हैं मत्स्य शिल्प क्षेत्र के नेता हैं वराह शासन व्यवस्था के धुरन्धर हैं किन्तु एक ऐसा समय आता है जब अत्यन्त सुन्दर शासन व्यवस्था के कारण प्रजा में ऐश्वर्य्य की मात्रा बढ़ने से आलस्य प्रमाद और विलासिता का साम्राज्य हो जाता है । घर घर में सोने का पलंग बिछे नज़र आते हैं । इसी का नाम है हिरण्यकशिपु, अर्थात् सोने का पलङ्ग है । यह असुर परमेश्वर के नाम से चिड़ता है । इसका पुत्र है प्रहलाद, अर्थात् आनन्द । ऐसे समय में वे वीर लोग उत्पन्न होते हैं जो क्रान्ति मचा कर इस विलासिता को छिन्न भिन्न कर डालते हैं और प्रजा में वीरता की भावना भरते हैं । यह नृसिंह हिरण्यकशिपु को तो मार देते हैं किंतु प्रहलाद की रक्षा करते हैं, अर्थात् लोगों को विलासिता के भ्रष्ट आनन्द से छुड़ा कर प्रभु-भक्ति का सच्चा आनन्द दिलाते हैं । ऐसे नरसिंहों के उदाहरण गुरु गोबिंदसिंह, शिवाजी तथा राणा प्रताप गेरीवाल्डी आदि महापुरुष हैं । इसकी विशेष व्याख्या क्या करें, सभी जानते हैं कि हिरण्यकशिपु शब्द का अर्थ सोने का पलङ्ग तथा प्रहलाद का अर्थ आनन्द है । कई लोग तो ऐसा काम करते हैं कि हृदय में पाप होने पर भी संसार

में पुण्य का ढोंग करते हैं। किंतु कई ढोंगी इस से उल्टे भी होते हैं, वे कुसङ्गति में पड़ कर हृदय में उठती हुई भक्ति-रस की आवाज़ को ज़बरदस्ती दबाते हैं और अपनी चण्डाल चौकड़ी की वाह वाह लूटने के लिये अपनी आत्मा की सच्ची आवाज़ को पैरों तले रोंदने का ढोंग करते हैं। इसी युद्ध का नाम प्रहलाद और हिरण्यकशिपु का युद्ध है। परंतु अंत को प्रहलाद, पिता के इन अत्याचारों पर विजय पा ही लेता है। यह युद्ध सुख-सम्पत्ति के दिनों में ही सम्भव है। इसी लिये प्रहलाद को हिरण्यकशिपु का पुत्र कहा गया है, यही इन नामों का रहस्य है। किंतु यह आनन्द वह आनन्द है जो अपनी आत्मा की आवाज़ को सुन कर संसार की आवाज़ के विरोध में भी उस पर चलने से प्राप्त होता है इसी के लिये गीता में कहा है:—

यत्तदग्रे विष मिव परिणामेऽमृतोपमम्
तत् सुखंसात्विकम्प्रोक्तमात्म बुद्धि प्रसादजम्

वामनावतार

हमें इस संसार में दो प्रकार की उन्नति देखने में आती है—एक व्यक्तिगत दूसरी सङ्गठन के साथ। एक मनुष्य उठता है, एक हल्ले के साथ संसार में कुछ चमक सी दिखा कर चला जाता है। किंतु उस की सारी रचना उसी के साथ विलीन हो जाती है। इसके दृष्टांत राजा रणजीतसिंह और नैपोलियन वोनापार्ट हैं। उनका नाम अद्वितीय था किंतु वह व्यक्ति गत था। यह लोग किसी विचार धारा के प्रतिनिधि नहीं थे। भारतीय इतिहास तो इस प्रकार के दृष्टान्तों से भरा पड़ा है। इन लोगों का कार्य आरम्भ में बड़ा होने पर भी बड़ी

शीघ्रता से ह्रास को ओर बढ़ता है और उन के अन्त के साथ ही स्वयं भी नष्ट हो जाता है। दूसरी ओर जो लोग व्यक्तिगत स्वार्थ को बिल्कुल परित्याग करके सङ्गठन के लिये जीना आरम्भ करते हैं उनके कार्य पहिले छोटे कलेवर से आरम्भ होते हैं किन्तु धीरे धीरे दृढ़ता के साथ बढ़कर संसार पर छा जाते हैं। सो यह छोटे से धीरे धीरे बड़ा होना ही वामनावतार की कथा का रहस्य है। कूर्मावतार में यश के त्याग का वर्णन है। मत्स्यावतार में आलस्य और ईर्ष्या के त्याग के साथ शिल्प के अध्यवसाय का रूपक है, वराहावतार में हिसाब किताब की ईमानदारी और राजनीति कुशलता का रूपक है। नृसिंहावतार में श्रेय और प्रेय में से श्रेय मार्ग को चुनने वाली वीर रस पूर्ण विवेक शक्ति का अलङ्कार बांधा गया है। वामनावतार में धीरे धीरे बढ़ने वाले तथा चिरकाल तक परास्त होने पर भी हिम्मत न हारने वाले दृढ़ अध्यवसाय तथा बड़े हित के लिये छोटे स्वार्थ के बलिदान का वर्णन है शतपथ ब्राह्मण में इसकी कथा इस प्रकार आई है देव और असुरों में एक समय बड़ी स्पर्धा हुई, देव विचारे दबे हुये थे उधर असुर समझते थे कि सब धरती हमारी ही हमारी है, वे सोचने लगे चलो इस धरती को बांट लें देवों ने यह सुना तो वे जाकर बोले भाई कुछ हिस्सा तो हमें भी दो। असुरों ने कहा अच्छा यह विष्णु जितना लम्बा चौड़ा है उतने नाप की धरती तुम भी ले लो। सो विष्णु तो ठिगने से थे परन्तु देवों ने कहा कुछ परवाह नहीं इन्होंने हमें यज्ञ के नाप की धरती देदी तो बहुत देदी, बस उन्होंने विष्णु अर्थात् यज्ञ को सामने रखकर अग्न्याधान किया और पूरी भक्ति और श्रद्धा के साथ पुरुषार्थ आरम्भ किया बस इससे उन्हें यह सारी पृथ्वी प्राप्त हुई। • शतपथ १-२-५-१— तक

इस कथा में इतनी बातें स्पष्ट हैं—

१- असुर अपने अपने लिये धरती बांटते हैं किन्तु देव विष्णु के लिए काम करते हैं।

२- विष्णु नाम यज्ञ अर्थात् सङ्गठन का है

३- सङ्गठन का नाम स्मरण नहीं किया जाता किन्तु उसके लिये अग्नि जलाई जाती है अर्थात् व्रत धारण किये जाते हैं।

४- अग्नि की पूजा प्रभु भक्ति और परिश्रम से होती है।

५- सङ्गठन के लिये जीना, प्रभु की पूजा और निरन्तर उद्योग यह तीन देवों के लक्षण हैं।

इतिहास में इसका सुन्दर उदाहरण अंग्रेज़ी राज्य की स्थापना में मिलता है। भारत में चारों ओर जाट राजपूत, मराठे, मुग़ल पठान रुहेले आदि को राज्य स्थापन की चिन्ता लगी थी फिर उनमें भी परस्पर फूट थी यदि किसी सेनापति का दाव लगता था वह अपने राजा को मार कर स्वयं राजा बनने की चेष्टा से भी न चूकता था। ऐसे समय में, एक बादशाह की बीमार लड़की को एक अंग्रेज़ डाक्टर ने अच्छा कर दिया बादशाह ने कहा मांगो क्या मांगते हो। अंग्रेज़ डाक्टर भी यदि उस समय के अन्य भारतवासियों की प्रथा के अनुसार अपने लिये एक जागीर मांग लेता तो वह भी उसी आसुरी भावना के प्रवाह में बह जाता जिसमें राजपूत मराठे मुसलमान आदि सब बहे हुये थे किन्तु उस डाक्टर ने तो अपनी जाति के लिये सूरत में एक छोटी सी कोठी बना कर व्यापार करने के लिए अधिकार मांगे। परिणाम यह हुआ कि वह छोटी सी कोठी में से पैदा हुई वामन शक्ति इस सारे भारतीय साम्राज्य पर अधिकार जमाने में समर्थ हुई, यही वामनावतार की कथा का रहस्य है।

भगवान् परशुराम, रामचन्द्र, कृष्णचन्द्र, बुद्धदेव आदि जो महापुरुष अवतार कहलाए हैं उनके अवतार कहलाने का भी यही रहस्य है इन महापुरुषों ने जो कुछ किया, अपने लिये नहीं किया, प्रजा के हित के लिये, विष्णु के लिये किया। परशुराम ब्राह्मण थे, मदांध क्षत्रियों का दर्प दूर करने के लिये शस्त्र ग्रहण करके भी कभी राज्य-लोभ में नहीं फंसे। राज्य जीत कर फिर क्षत्रियों को दे देते और आप धनुर्वेद की विद्या पढ़ाने में जो कि ब्राह्मणों का कर्म है, लग जाते। जब उन का सामना एक विनय शील क्षत्रिय से हुआ, तत्क्षण अपनी भूल मान ली और तपोवन में जा बैठे। महाराज रामचन्द्र जी ने भी जीती हुई लङ्का फिर लङ्का वासियों को वापिस करदी और इस प्रकार अपने सच्चे त्याग भाव का परिचय दिया। यही वैष्णव धर्म्म है।

कृष्णचन्द्र महाराज भी जब चाहते, स्वयं राजा बन सकते थे, किंतु वे तो महाभारत अर्थात् भारत से बाहर फैले हुए भारतीय साम्राज्य के पुनरुद्धार के लिए आए थे। वे न तो स्वयं राजा बने, न कौरव पाण्डव आदि किसी दल में सम्मिलित हुए। दुर्योधन जैसे अभिमानी की भी खुशामद में लगे रहे कि किसी प्रकार इस दुष्ट को सुबुद्धि आ जाय। कंस को मारा तो मथुरा का राज्य चरणों में आया। उसे छोड़ कर विद्याभ्यास के लिये प्रभास तीर्थ में गुरुकुल में चले गये। द्वारिका का राज्य मिला तो वह भी भाइयों को दे दिया। युधिष्ठिर राज सूय में तो उनकी नम्रता पराकाष्ठा पर पहुँची। इस यज्ञ में वे स्वयं अपने हाथ से ब्राह्मणों के चरण धुलाते थे।

द्वारिका के सिंहासन पर बैठ कर भी वे सुदामा से कैसा प्रेम करते थे। यही कारण था कि वे भी वैष्णव अवतार कह-

लाए। महात्मा बुद्ध का त्याग भी संसार में अपनी एक अलग ही शोभा रखता है। इन सब में एक ही भाव है। भगवान् इस संसार को बनाता है, और प्राणी मात्र की सेवा करता है, किंतु बदले में कुछ नहीं मांगता। बस, परशुराम, रामचन्द्र, कृष्ण-चन्द्र, बुद्धदेव आदि भक्तों ने भी उस महा विष्णु के इस त्याग गुण की तस्वीर निरन्तर अभ्यास द्वारा अपने जीवन में उतारी। इसीलिये वे विष्णु के अवतार कहलाए और भविष्य में भी जो ऐसा करेंगे, वे वैष्णव अवतार कहलाएंगे।

नोट— इन अवतारों की कथा ३२ पृष्ठ पर देखिये।

विष्णु मूर्ति

जिन लोगों ने मन्दिर में विष्णु की मूर्ति बनाई है, वे भी इसी सङ्गठन की ही पूजा चलाना चाहते थे। इस मूर्ति का मर्म्म इस प्रकार है :—

यहां विष्णु शक्ति के विषय में कुछ मनोरञ्जक बातों का उल्लेख अप्रासङ्गिक न होगा। यज्ञ का अर्थ है सङ्गति-करण। 'यज्ञ' और 'विष्णु' शब्द शतपथ-ब्राह्मण में पर्य्यायवाची रूप से आये हैं। इसलिये विष्णु का अर्थ है व्यापक होकर सङ्गति-करण करने की शक्ति। इस 'सङ्गठनशक्ति' को ही पुराणों में भी 'विष्णु' के नाम से कहा गया है। परन्तु उस मूल को न समझ कर पुराणकारों ने गपोड़ों से तथा अश्लील कथाओं से ऐसा लाद दिया है कि ऋषि दयानन्द का 'विषसंपृक्तान्न' शब्द इनके लिए पूर्णरूपेण चरितार्थ होता है!

पुराण का विष्णु शंख, चक्र, गदा और पद्मधारी है। मर्म्म की बात यह है कि यहां अलङ्कार से सङ्गठन का स्वरूप दिखाया गया है। वह संगठन संसार में सफल होता है

जिसके पास 'शङ्ख' अर्थात् अपनी आवाज़ को संसार में अधिक से अधिक मनुष्यों तक पहुंचाने के साधन समाचार-पत्र, व्याख्यान दाता, उपदेशक आदि अधिक हों। दूसरे जिसके पास 'चक्र' अर्थात् बैलगाड़ी, घोड़ागाड़ी, रेलगाड़ी, मोटर, व्योमयानादि चक्र अधिक हों। तीसरे 'गदा' अर्थात् शत्रुओं के ताड़न का दण्ड अर्थात् युद्ध सामग्री अधिक हो। चौथे 'पद्म' अर्थात् लक्ष्मी का निवास स्थान, फलतः कोष अधिक हो। इन चार के बल पर संगठन चलता है। साथ ही वह संगठन 'लक्ष्मीपति' हो अर्थात् धनवानों को दबाकर रखता हो। लक्ष्मी निवास क्षीर-सागर में करती है। आज तो क्षीर-सागर के स्थान पर रुधिर-सागर, सुरा-सागर, चाय सागर, काफी सागर का राज्य है, लक्ष्मी कहां रहे? विष्णु शेषशायी हैं किसी भी संगठन के आय और व्यय की तुलना करलो, जिसमें कुछ शेष रहे वही संगठन जीता रहता है हमारा शरीर एक छोटा-सा विष्णु है मुख इसका शङ्ख है, भुजायें गदा हैं, रुधिर का चक्र इसमें चक्र है और उदर में कोष का सञ्चय होता है अतः वह पद्म है किन्तु जब इसमें शक्ति की आय से व्यय अधिक हो जाय उसी क्षण मृत्यु हो जाती है। विजिगीषा (Ambition) गरुड़ है उसी पर चढ़कर सङ्गठन विजय यात्रा के लिए निकलता है किन्तु विजय यात्रा के लिए निकलते ही शेष (Surplus) खाली होने लगता है इस लिए त्रैलोक्य नाथ वही है जिसके राज्य में वह दोनों वैरी सर्प और गरुड़ शेष और विजिगीषा Surplus और Ambition वैर छोड़कर प्रेम पूर्वक रहें शेष को सर्प इस लिये कहा क्योंकि वह रेंग रेंग कर बड़े यत्न से सञ्चित होता है।

विष्णु के द्वार पालों का नाम जय विजय है। इसका भाव

यह है कि राष्ट्र में समय समय पर, क्या विद्या, क्या व्यायाम क्या शिल्प सब क्षेत्रों में स्पर्धायुक्त सम्मेलन होने चाहियें। चाहे वे दङ्गलों में हों, चाहे क्रीड़ा क्षेत्रों में, चाहे रङ्ग भूमि में, चाहे परीक्षा-शालाओं में, इन सब में जो जय प्राप्त करें वही राष्ट्र में अग्रसर होने योग्य हैं। दूसरी ओर राष्ट्र के आक्रमण कार्यों पर जो विजय प्राप्त करें, वही राष्ट्र में बड़े पदों पर जाने योग्य हैं। परस्पर स्पर्धा में सफलता का नाम जय है। शत्रु के आक्रमण में उसको परास्त करने का नाम विजय है। जिस राष्ट्र के भवन में प्रवेश करने के लिये द्वार पर ही यह पूछा जाय कि तुमने क्या जय किया है या कहां विजय पाई है ? वहां सदा सुख है। किन्तु जहां द्वारपाल का स्थान सिफ़ारिश, रिश्वत या कुलीनता को मिल जाय, वहां सर्वनाश न हो तो क्या हो। पुराणों में जो यह कथा आती है कि रावण, शिशुपाल आदि जब मरे तो उनका तेज भगवान् विष्णु में समा गया। इसका भाव यह है कि संसार में दुष्ट से दुष्ट लोगों ने जब कुछ देर के लिये विजय पाई तो वह सङ्गठन द्वारा ही पाई। और जितने अंश तक उन्हों ने स्वार्थ त्याग, आज्ञा परायणता आदि सङ्गठन के नियमों का पालन किया, उतने अंश तक वे विष्णु का ही अंश थे। और यदि किसी राष्ट्र के लोगों ने शत्रुओं के भी गुणो से लाभ उठाना सीख लिया, उनके शत्रुओं का तेज भी उनके राष्ट्र शरीर में समा जाता है। यही असुरों का तेज विष्ण में समाने का भाव है।

इस प्रकार हमने देख लिया कि—

शक्ति नाम शरीर में वीर्य्य तथा राष्ट्र में सेना का है। शिव नाम व्यक्ति में शिव सङ्कल्प और राष्ट्र में सेनापति का है।

विष्णु नाम, सम्पूर्ण शरीर अथवा राष्ट्र का है। शक्ति पूजा

नाम वीर्य्य-रक्षा का तथा सैन्य-शक्ति सम्पादन का है। शिव पूजा नाम ब्राह्मण, क्षत्रियादि सङ्कल्प धारण करने का, अथवा सच्चे सेनापति की आज्ञा मानने का है।
विष्णु पूजा नाम समाज के लिए व्यक्ति के स्वार्थ के समर्पण का है। इन अर्थों में शिव, शक्ति, विष्णु सब एक दूसरे के सहायक हैं विरोधी नहीं। शाक्त वह है जो वीर्य्य रक्षा करें, ब्रह्मचारी हों। शैव वह है जिन्होंने अपने जीवन का ठीक लक्ष्य बनाया हो, जो अपने ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य वर्ण के व्रत को अटल रूप से निभाते हों। वैष्णव वह है जो सङ्गठन के लिये अपने आप को सदा अर्पण करने के लिये तय्यार हो। यही बात तो भक्तों ने कही—

वैष्णव जन तो तेने कहिये जो पीर पराई जानेरे

किंतु जब से शाक्त, शैव और वैष्णव के यह अर्थ लुप्त हुए और उनका स्थान नाना प्रकार के तिलक और नाना प्रकार की मूर्तियों ने ले लिये, तब से यही शिव शक्ति और विष्णु कलह का कारण बने।

यही नहीं, कभी कभी तो विचित्र घटनाएं देखने में आती हैं। रघुनाथ जी का मन्दिर है, उसमें भक्तों की मण्डली बैठी है। कीर्तन हो रहा है—

रघुपति राघव राजाराम, पतित पावन सीताराम।

सुनने वाला विचार में मग्न हो जाता है। वह कल्पना की आंखों से देखता है कि मर्य्यादा पुरुषोत्तम भगवान् राम वन में व्याकुल विचर रहे हैं। अन्त में उन की सुग्रीव से मैत्री होती है, फिर रावण से लड़ाई ठनती है। सुग्रीव की सेना में जंगली लोग हैं और रावण जैसे शत्रु का सामना करना है। किंतु उनको कभी यह विचार नहीं आया कि भरत से कह कर

युद्ध में सहायता के लिये कुछ सेना मंगालें। उन्हें काम लेना है और इन्हीं जङ्गलियों से काम लेना है। और अन्त को उन्होंने इन्हीं से काम लिया, किस के बल पर?—

प्रेम के बल पर। यह सब जङ्गली सेना जिस का नाम लोगों ने हंसी से वानर सेना रख दिया था, राम पर जान देती थी। प्रेम ऐसी ही शक्ति है। इन्हीं जंगलियों के बल पर रावण को परास्त करके, सीता सहित राम लौट रहे हैं।

कानों में कीर्तन की आवाज़ गूञ्ज रही है—

रघुपति राघव राजाराम
पतित पावन सीताराम।

कल्पना के प्रवाह में एक दूसरा दृश्य आंखों के सामने आया—

यह एक हिन्दू विधवा है, नित्य रामायण पढ़ती है। पड़ौस के गुण्डे सबको छेड़ते हैं परन्तु उसके सामने निस्तेज हो जाते हैं। गुण्डों ने अनेक बार उसकी परीक्षा ली है और अन्त को निस्तेज हो गये हैं जब २ उसके सतीत्व पर आक्रमण हुआ है तब तब सती सीता के चरित्र ने उसे बल दिया है इसी का फल है कि उसने न केवल अपने आपको बचाया है उलटे अनेक बहिनों के डग मगाते पैर रास्ते पर डाल दिये हैं आज सारी बस्ती उसकी पूजा करती है।

कान में फिर वही कीर्तन गूंज रहा है।

रघुपति राघव राजाराम
पतित पावन सीताराम॥

यह आवाज़ मंदिर से निकलकर राह चलते एक चमार के कान में जा पड़ी। उसकी इच्छा हुई कि चलो पतित पावन

के दर्शन कर लूं वह मन्दिर में घुसने लगा। । द्वार पर वैष्णव तिलक लगाए, पांडे जी खड़े थे, बोले कहां जाते हो। (उत्तर) दर्शन को। (प्रश्न) तुम कौन ? (उत्तर) महाराज मैं चमार हूं। यहां कहां जाते हो (उत्तर) दर्शन को।

पांडे जी बोले, नहीं जाने पाओगे।

क्यों नहीं महाराज ?

अरे तुम पतित हो।

बस महाराज इसीलिये तो जाता हूं।

मैं पतित हूं वे पतित पावन हैं।

पाँडे जी—बस फिर भी नहीं जाने पाओगे।

क्यों ?

क्यों क्या ? हमारी मर्ज़ी।

दर्शक सोच में पड़ जाता है। कि क्या यही लोग वैष्णव हैं इनका कीर्त्तन मंत्र तो यों होना चाहिए।

रघुपति राघव राजाराम

धक्का देवन सीताराम

पतित पावन सीताराम आज कहां चले गये। उत्तर मिलता है जब से वैष्णव धर्म अपने असली रूप को छोड़कर तिलक छाप और मूर्त्तियों में चला गया तब से यह कलह चला।

आर्य्यो उठो !

वीर्य्य की रक्षा करो शक्ति की पूजा करो। वीर वाहिनी तैय्यार करो। तुम शाक्त हो जाओगे।

अपनी शक्ति की रक्षा के लिए ब्राह्मण क्षत्रियादिवर्ण चुन कर उन पर अटल रहो और तुम्हारी सेना सेनापति के वचन पर अटल रहे यही शिव पूजा है इससे तुम्हारी शक्ति की

रक्षा हो जायगी सच्चा शैव ही सच्चा शाक्त है और सच्चा शाक्त ही सच्चा शैव है।

यदि तुम अपने नेताओं का वचन पालोगे तो तुम शंख वाले यदि मोटर व्योमयानादि सामग्री संग्रह करोगे तो चक्र वाले उत्तम शस्त्रास्त्र संग्रह करोगे तो गदा वाले और यदि कोष संग्रह करोगे तो पद्म वाले हो जाओगे। यही तुम्हारा चतुर्भुज रूप है इसको अपने में धारण करो। किन्तु एक याद रखना। यदि तुम्हारे कोष में उधार का धन होगा तो तुम्हें सुख की नींद नसीब न होगी। इसलिये राष्ट्र की सम्पत्ति बढ़ाओ जिससे आय में से व्यय निकालकर सदा तुम्हारे पास कुछ शेष रहे!

देखो जब से तुमने राष्ट्र की वृद्धि की भावना छोड़ी है और सार्वभौम साम्राज्य के स्वप्न छोड़े हैं तुम मिट्टी में मिल गये हो। यदि फिर आकाश में उड़ना चाहते हो तो विजिगीषा रुप गरुड़ पर सवार हो जाओ।

और एक बात और सुनो अपने इस राष्ट्र भवन में उन्हें ही घुसने दो जिन्होंने अपने गुणों द्वारा कोई पदवी जय की हो अथवा राष्ट्र के किसी शत्रु पर विजय पाई हो। यह जय विजय ही तुम्हारे द्वारपाल हैं।

और सब से बड़ी बात यह है कि तुम कोई पदार्थ अपना न समझो [illegible] विष्णु के हैं, यही सच्चा वैष्णव धर्म [illegible] वैष्णव ही सच्चा शैव है।

[illegible] ान् विद्या की खोज में लगे हैं वहां [illegible] उत्तम शिल्पी हैं, वहां मत्स्यावतार हैं। जहां राजनीतिज्ञ हैं, व वराहावतार है। जहां क्रांतिकारी नेता हैं, वहां नृसिंहावतार हैं। जहां दृढ़ अध्यवसाय है, वहां

वामनावतार है। जहां स्वार्थ त्याग है, वहां परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध कल्कि सब हैं, यही अवतारों का रहस्य है।

धन्य हो महर्षि दयानन्द! जिस प्रकार अनेक विरोधी जीव तपोवन में वैर-भाव बिसार कर आनन्द से निवास करते हैं, इसी प्रकार तुम्हारी वेद ज्योति के प्रकाश में इन सच्चे अर्थों के जान लेने से शिव-शक्ति और विष्णु, एक ही पुरुष में इकट्ठे हो गए हैं। शक्ति की जय हो, शिव की जय हो, विष्णु की जय हो, दयानन्द की जय हो, अर्थात् वैदिक धर्म की जय हो।

मत्स्यावतार

मत्स्यावतार की कथा पुराणों में इस प्रकार है कि एक बार सब धरती जल में डूबने लगी तो भगवान् विष्णु ने मत्स्य अर्थात् मच्छी का रूप धारण करके धरती का उद्धार किया।

कच्छपावतार

इसकी कथा पुराणों में इस प्रकार है कि जब देव असुर मेरु पर्वत् को मन्थन दण्ड बनाकर और वासु कि नाग की रस्सी बनाकर समुद्र का मन्थन करने लगे तो मेरु पर्वत नीचे ही नीचे धंसने लगा इस पर भगवान् विष्णु ने कछुए का रूप धारण करके मेरु पर्वत को अपनी पीठ पर धारण कर लिया।

वराह अवतार

इसकी कथा इस प्रकार है कि हिरण्याक्ष नाम का दैत्य धरती को समुद्र में डुबाने लगा तो भगवान् ने सूअर का रूप धारण करके उसे मार गिराया।

नृसिंहावतार

इसकी कथा इस प्रकार है कि हिरण्यकशिपु नामक दैत्य ने अपने पुत्र प्रह्लाद को प्रभु भजन से रोका जब वह न माना तो वे उसे मारने लगे तब भगवान् ने नृसिंह रूप धारण करके हरिण्यकशिपु को नाखुनों से चीर दिया।

वामनावतार

इसकी कथा इस प्रकार है कि बलिदानव जब इन्द्र बनने के लिये यज्ञ करने लगा तो भगवान ने एक बौने ब्राह्मण का रूप धारण करके उससे साढ़े तीन हाथ भूमि मांगी और जब उसने दे दी तो एक दम विशाल रूप धारण कर के उसे बन्दी बना लिया।

मुद्रकः—
सत्यवती स्नातिका, एम० एल० ए०
अजय प्रिंटिंग वर्क्स वैस्टर्न कचहरी रोड मेरठ।